पावलो फ्रेरे के शैक्षिक चिंतन के संदर्भ में
भारतीय शैक्षिक परिदृष्य

देवेंद्र सिंह*

शिक्षा सिर्फ़ सूचनात्मक ज्ञान, सैद्धांतिक ज्ञान, पुस्तकीय ज्ञान एवं सीखने-सिखाने की अवधारणा न होकर आजीवन चलने वाली सोद्देश्य प्रक्रिया एवं सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम है। यही कारण है कि विश्व के सभी चिंतक एवं दार्शनिक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा संदर्भ से जुड़े रहे हैं। आधुनिक भारतीय शिक्षा अपनी अर्द्ध औपनिवेशिक प्रवृत्ति के कारण विभिन्न आंतरिक दुर्बलताओं को सातत्य प्रदान करती जा रही है जो निश्चित रूप से चिंतनीय है। भारतीय संदर्भ में टैगोर, विवेकानंद, अरविंद, गाँधी, गिजुभाई, जैसे विचारकों ने जिस भारतीय शिक्षा की समस्याओं को विश्लेषित किया है उसी को यूरोप, अमेरिका, ब्राजील की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक उपक्रमों के क्षेत्र में पावलो फ्रेरे ने देखने का प्रयास किया है। फ्रेरे, इवान इलिच की भाँति सम्पूर्ण शैक्षिक ढाँचे को नष्ट करने के हिमायती तो नहीं हैं लेकिन शिक्षा प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन चाहते हैं। फ्रेरे भी मानते हैं कि शिक्षण संस्था से बाहर भी शिक्षा जैसी कोई चीज हो सकती है। वह शिक्षा प्रणाली के माध्यम से छात्रों में आलोचनात्मक चेतना विकसित कर सामाजिक न्याय केंद्रित, शोषण मुक्त और पूर्ण मानुषीकरण जैसा परिवर्तन, शैक्षिक क्रांति द्वारा लाने पर बल देते हैं। पावलो फ्रेरे ने शिक्षा को रुचिकर बनाने, पाठ्यक्रम का लचीलापन, स्वतः स्फूर्ति द्वारा सीखना, शिक्षक को अभिभावकत्व बोध बनाने, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिकता से समृद्ध करने, बालक को वस्तु की जगह मानव ईकाई मानने, सीखने को कृत्रिमता के भ्रम से यथार्थ के धरातल पर लाने, अनौपचारिक शैक्षिक गतिविधियों को शैक्षिक रूप से अधिक प्रभावी बनाने, शिक्षा के माध्यम से सामाजिक रूपान्तरण करने आदि के बहुत से प्रयास किए हैं।

**रीडर, शिक्षा संकाय, सतीश चंद्र कॉलेज, बलिया, उत्तर प्रदेश.*

शिक्षा सिर्फ सूचनात्मक ज्ञान, सैद्धांतिक ज्ञान, पुस्तकीय ज्ञान या सीखने-सीखाने की अवधारणा न होकर आजीवन चलने वाली सोद्देश्य प्रक्रिया एवं सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम है। यह व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर मानव जीवन की गुणात्मकता को निर्धारित करती है, क्योंकि मनुष्य का सर्वांगीण विकास जितना शिक्षा से जुड़ा है, शायद अन्य किसी पक्ष से नहीं। यही कारण है कि विश्व के सभी चिंतक एवं दार्शनिक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा संदर्भ से जुड़े रहे हैं। पावलो फ्रेरे भी पाश्चात्य संदर्भ के शैक्षिक विमर्श से जुड़े ऐसे ही शैक्षिक चिंतक हैं जिनके चिंतन की सांदर्भिक उपादेयता भारतीय शैक्षिक संदर्भ में विवेचित एवं विश्लेषित की जा सकती है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली की वर्णनात्मक प्रवृत्ति

वर्तमान शैक्षिक संदर्भ में शिक्षा व्यक्ति को विशिष्ट दिशा देने में असमर्थ-सी हो रही है क्योंकि वह सिर्फ सूचनात्मक, पुस्तकीय एवं सैद्धांतिक ज्ञान तक ही सीमित होती जा रही है। परिणामतः दिशाहीन एवं निरर्थक है। यह शिक्षक-शिक्षार्थी के अर्थपूर्ण संवाद से संबंधित न होकर सिर्फ वर्णन करती है। शिक्षक एवं शिक्षार्थी में ज्ञान की जिज्ञासा एवं अध्ययन-अध्यापन की प्रवृत्ति समाप्त-सी हो गयी है। शिक्षक सिर्फ वेतनभोगी व्यक्ति रह गया है और शिक्षार्थी सिर्फ प्रमाणीकरण से जुड़ने वाला व्यक्ति। शिक्षक सूचनात्मक ज्ञान को शिक्षार्थी के सम्मुख आधे-अधूरे मन से प्रस्तुत करता है, अर्थात् शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक सक्रिय भूमिका में होता है वहीं शिक्षार्थी शिक्षक केंद्रित (शिक्षार्थी निष्क्रिय) व्याख्यान को सुनता है। वर्णन छात्रों को वर्णित वस्तु को यांत्रिक ढंग से रट लेने के तरफ ले जाता है। फ्रेरे (1970) का मानना है—

> *"इससे भी स्थिति नाजुक तब होती है जब शिक्षक, शिक्षार्थी को 'पात्र' या बर्तन बना देता है। जिन्हें शिक्षक द्वारा भरा जाना होता है।"*

इस प्रकार शिक्षा की वर्णनात्मक प्रणाली में शिक्षक सक्रिय (वर्णनकर्त्ता) होता है। शिक्षार्थी (श्रोता) होता है। वर्णन की प्रक्रिया में शिक्षक का ज्ञान के ऊपर एकाधिकार होता है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली भी आज शिक्षा वर्णन के रोग से पीड़ित है। जबकि शिक्षा, शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य सिर्फ अर्थपूर्ण संवाद न होकर (द्विमुखी प्रक्रिया), त्रिमुखी (शिक्षक-शिक्षार्थी-पाठ्यक्रम) प्रक्रिया है। यह सिर्फ सूचनात्मक ज्ञान से संबंधित न होकर विवेक से समन्वित है। इस प्रकार शिक्षा को जितने अवयव प्रभावित और निर्धारित करते हैं, इस दृष्टिकोण से वर्तमान संदर्भ में शिक्षा आजीवन चलने वाली बहुमुखी प्रक्रिया है एवं विवेकोउन्मुख मानवीकरण की संवाद की प्रक्रिया है। इसे आलोचनात्मक चेतना एवं सृजनात्मकता से संबंधित होना चाहिए। भारतीय शिक्षा प्रणाली के इस रोग को पावलो फ्रेरे के विचारों का आधार मानकर बैंकिग पद्धति (वर्णनात्मक) से समस्या समाधान (स्वतंत्रवादी) पद्धति की तरफ प्रतिमान परिवर्तन करके दूर किया जा सकता है क्योंकि समस्या समाधान शिक्षा का उद्देश्य शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच अर्थपूर्ण सामंजस्य उत्पन्न करना है। शिक्षा का

प्रारम्भ शिक्षक शिक्षार्थी अंतर्विरोध का समाधान करना होता है और यह तभी हो सकता है जब अन्तर्विरोध के दोनों ध्रुवों को मिला दिया जाए और शिक्षक तथा शिक्षार्थी दोनों एक साथ बँध जाए। शिक्षा की वर्णनात्मक प्रवृत्ति मनुष्य को वस्तु के रूप में मानकर चलने की शिक्षा समझ से प्रारम्भ होती है, इसलिए वह 'जीवन प्रेम' के विकास को प्रोत्साहित नहीं करती, बल्कि इसके विपरीत 'मृत्यु प्रेम' पैदा करती है। इस प्रकार भारतीय शिक्षा में भी प्रतिमान परिवर्तन (वर्णनात्मक से समस्या समाधान) करके मानव जीवन की गुणात्मकता को बनाए रखा जा सकता है।

शिक्षा प्रणाली एवं सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों का संबंध विच्छेद

वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली से सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों (सत्य, धर्म, प्रेम, शांति, अहिंसा) का संबंध विच्छेद-सा हो गया है, जिससे शिक्षा प्रणाली में प्रदर्शन प्रभाव (डिमांस्ट्रेशन इफेक्ट) परिलक्षित हो रहा है एवं सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का अवमूल्यन हुआ है क्योंकि शिक्षा एवं सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों में अनन्य संबंध है। मानवीय मूल्यों के अवमूल्यन के कारण प्रचलित शिक्षा प्रणाली दिशाहीन, निरर्थक एवं अप्रासंगिक सिद्ध हो रही है, जिससे राष्ट्रीय चेतना, चरित्र, सोच एवं प्रतिभा में ह्रास हुआ है। पूर्णतः मूल्य विमुख शिक्षा से संस्कार, चरित्र एवं सर्वांगीण विकास की पूर्णतः उपेक्षा होती है। सिर्फ संसद द्वारा अनुमोदित शिक्षा को ही राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली नहीं कहा जा सकता। सही अर्थों में राष्ट्रीय शिक्षा वह है जो राष्ट्र की प्रतिभा, परम्परा एवं चरित्र से जुड़ी हुई हो।

शिक्षा से मानवीय मूल्यों के विलोप के कारण सम्पूर्ण मानव जीवन की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है क्योंकि मानव जीवन की गुणवत्ता का मानवीय मूल्यों से अनन्य संबंध है। मूल्य विमुख शिक्षा प्रणाली का दुष्प्रभाव यह हो रहा है कि यह एक ओर भौतिकतावादी प्रवृत्तियों एवं उपभोक्तावादी समाज को प्रोत्साहित कर रही है दूसरी तरफ एकांगी होकर आध्यात्मिकता से उदासीन होती चली जा रही है। मानव जीवन की गुणवत्ता एवं संतुलन के लिए शिक्षा एवं सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों में समन्वय होना चाहिए। आधुनिक प्रचलित शिक्षा व्यक्ति में सिर्फ बौद्धिकता का विकास कर रही है, परिणामतः ज्ञान का तो विस्तार हो रहा है लेकिन विवेक क्षीण हो रहा है जिससे जीवन मूल्यों में ह्रास हो रहा है। आज विश्व समाज पीड़ित है। क्योंकि ज्ञान का विस्तार तेजी से हो रहा है। ज्ञान के विस्तार के अनुपात में जीवन मूल्य नहीं विकसित हो पाए हैं। वैश्विक संदर्भ में यही दुःख का कारण है क्योंकि सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों (सत्य, धर्म, शांति, प्रेम, अहिंसा) के बिना शिक्षा का मूल्य शून्य है।

पावलो फ्रेरे के चिंतन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने जिस मूल्योन्मुख शिक्षा प्रणाली को प्रस्तुत किया है, वह सामाजिक न्याय, शोषणविहीनता एवं मानवतावादी आदि श्रेष्ठ मूल्यों पर आधरित है जो शोषणविहीन समाज की स्थापना के लिए श्रेष्ठतर है। पावलो फ्रेरे के चिंतन के सम्यक् विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उन्होंने शिक्षा एवं व्यक्ति के जीवन की गुणात्मकता को एक दूसरे का पर्याय माना है। तात्पर्य यह है कि फ्रेरे ने

व्यक्ति की सर्वोच्च नैतिकता का विकास (मुक्ति की सांस्कृतिक कार्रवाई) के उपकरण के रूप में सार्वभौमिक मानवीय मूल्य (चिंतन एवं कर्म) को स्वीकार किया है। स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि स्वावलम्बी, सच्चरित्र, विनयशील, करुणायुक्त, दयावान, अहिंसक, शोषणविहीन युक्त मानव का निर्माण शिक्षा ही कर सकती है।

आज भारतीय संदर्भ जिस राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक व चारित्रिक संकट के दौर से गुजर रहा है उससे बचा जा सकता है, यदि राष्ट्रीय हित, समग्रविकास एवं शिक्षा में सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों को व्यवहार में उतारते हुए। फ्रेरे के चिंतन का अनुसरण किया जाए जो सामाजिक न्याय, सामाजिक समानता एवं शोषणविहीनता आदि मानवीय मूल्यों पर आधारित है वर्तमान संदर्भ में उपादेय है। केवल लिपि व भाषा व्यक्ति के शिक्षित होने के मानक नहीं हो सकते। मूल्य बोध, सामाजिक न्याय, कर्त्तव्यपरायणता मानुषीकरण तथा संवेदनशीलता अधिक स्वीकार्य मूल्य हैं। निष्कर्षत: सार्वभौमिक मानवीय मूल्य एवं शिक्षा प्रणाली एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधाभासी नहीं। दूसरों से प्रेम करना, दूसरों की सहायता करना, पारस्परिक सहयोग से अपना तथा दूसरों का विकास करना फ्रेरे के लिए मानवीय मूल्य रहे।

शिक्षा के राजनीतिकरण का संकट

वर्तमान भारतीय संदर्भ में राजनीति मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रही है, जिससे राष्ट्र विशेष की शिक्षा भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। आज जब व्यक्ति जीवन में उदासीन, भ्रांति एवं क्लांति से पीड़ित है, समाज सामाजिक विषमता से प्रभावित है, राजनीति मनुष्य के सार्वजनिक जीवन को उभारने व संवारने के बजाए उसे नकारात्मक दृष्टिकोण प्रदान कर रही है। लोकतंत्र एवं लोकतांत्रिक मूल्य सिर्फ सैद्धांतिक अवधारणा होकर रह गए हैं। राजनीति के अपराधीकरण एवं अपराधियों के राजनीतिकरण के कारण लोकतांत्रिक नैतिकता क्षीण होती जा रही है। इन संदर्भों में राजनीति से सकारात्मक दृष्टिकोण की उम्मीद करना निरर्थक है। राजनीति, राजनीतिक विचारधारा एवं राजनेता सभी शिक्षा में हस्तक्षेप एवं अतिक्रमण कर रहे हैं एवं छात्रों को संकीर्ण राजनीति की तरफ प्रेरित कर रहे हैं जिससे शिक्षकों-छात्रों में अध्ययन-अध्यापन की प्रवृत्ति समाप्त हो रही है।

आदर्श स्थिति यह है कि व्यक्ति निश्चित रूप से राजनीति शास्त्र का अध्ययन करें लेकिन शिक्षा जो व्यक्ति को विशिष्ट दिशा देती है एवं सबका विकास करती है, उसका राजनीतिकरण न करें। शिक्षाप्रणाली न्यायपालिका जैसी स्वतंत्र होनी चाहिए। शिक्षा का राजनीतिकरण न होकर राजनीति का शिक्षाकरण होना चाहिए, तत्पश्चात् व्यक्ति का शिक्षाकरण होना चाहिए। अत: प्रतिमान परिवर्तन राजनीति एवं व्यक्ति के शिक्षाकरण की तरफ होना चाहिए। छात्रों को समर्पण की भावना से अध्ययन करना चाहिए। जिससे वे शैक्षणिक उत्कृष्टता की ओर अग्रसर हो सकें। शिक्षा के राजनीतिकरण के कारण ही शिक्षण संस्थाओं में धरना-प्रदर्शन एवं हड़ताल होते रहते हैं। जिससे शैक्षिक पारिस्थितिकी पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ रहा है। निष्कर्षत: सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली न्याय प्रणाली जैसी स्वतंत्र होनी चाहिए एवं राजनीति

का शिक्षाकरण एवं शिक्षा का अराजनीतिकरण ही सर्वश्रेष्ठ विकल्प है। लेकिन पावलो फ्रेरे का मानना है कि शिक्षा भी एक राजनीति है। क्योंकि बिना शिक्षा के राजनैतिक क्रांति नहीं हो सकती। उद्देश्य यह होना चाहिए कि कैसे व्यक्तियों का विवेकीकरण एवं मानुषीकरण किया जाए। इसीलिए फ्रेरे कहते हैं कि शिक्षा तो एक राजनीति है, लेकिन क्या राजनीति शैक्षिक है? तत्पश्चात् उनका मानना है कि चोरी से शिक्षा पहुँचानी होगी। निष्कर्षत: शैक्षिक क्रांति के माध्यम से ही राजनैतिक क्रांति लायी जा सकती है एवं शिक्षा का अराजनीतिकरण ही राजनीति के शिक्षाकरण में सहायक सिद्ध हो सकता है (टेलर–1993)।

प्रमाणीकृत शिक्षा लक्ष्य और मानवतावादी शिक्षा लक्ष्य द्वन्द्व

मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा तो एक ऐसा मंत्र है जो व्यक्ति के सम्पूर्ण आचरण, व्यवहार एवं जीवन–मूल्यों को प्रभावित करता है। शिक्षा से केवल शिक्षा ग्रहण करने वाला ही प्रभावित नहीं होता, बल्कि प्राप्त शिक्षा से निर्मित अपने व्यक्तित्व से व्यक्ति सम्पूर्ण परिवेश, समाज और राष्ट्र को उत्प्रेरित करता है। अत: शिक्षा का मानव–सभ्यता के इतिहास के आदि काल से ही विकास होता रहा है तथा इसके मूल्यों में युगानुरूप परिवर्तन भी हुआ है। प्रत्येक देश विशिष्ट सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश को प्रकट करने में बढ़ावा देने और चुनौतियों का सामना करने के लिए समसामयिक अपेक्षाओं के अनुरूप शिक्षा प्रणाली में परिवर्द्धन व संवर्द्धन भी करता है। परन्तु कोई भी शैक्षिक लक्ष्य राष्ट्र के लिए तभी उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है जब वह अपने राष्ट्र विशेष की संस्कृति और भौतिक प्रगति के साथ–साथ सामान्य नागरिकों के जीवन मूल्यों तथा एकता की भावना को भी सुदृढ़ करे। (गौड़–2001)।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में संकीर्ण शैक्षिक लक्ष्यों को ही शिक्षा की अवधारणा माना जाने लगा है क्योंकि प्रमाणीकृत शिक्षा एवं मानवतावादी शिक्षा में द्वन्द्व–सा है। आज उपाधि उन्मुख शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत विद्यार्थी को उपाधियों से अलंकृत या विभूषित करना ही शिक्षा का परम उद्देश्य हो गया है। प्रमाणीकरण के कारण प्रमाण–पत्र बाजार में उसके मूल्य सूचक बन जाते हैं, जिससे समाज में उसके प्रत्याशा स्तर को परिभाषित किया जाता है। शिक्षा प्रणाली में यह सिखाया जाता है कि अनुदेशन से ही अधिगम उत्पन्न होता है। शिक्षण संस्थाएँ इस बात को सफलतापूर्वक प्रमाणित करती हैं कि सभी मूल्यवान अधिगम उसी परिवेश में घटित होते हैं। इसीलिए वह पाठ्यक्रम तथा शिक्षण विधियों में मानकीकरण लाती है, जबकि प्रमाणीकृत शिक्षा लक्ष्य एक मिथ्या है। पावलो फ्रेरे का मानना है कि संस्था से बाहर भी शिक्षा जैसी कोई प्रक्रिया हो सकती है। इसलिए फ्रेरे ने शिक्षा का लक्ष्य विवेकीकरण के माध्यम से व्यक्ति का पूर्ण मानुषीकरण रखा। उनके अनुसार शिक्षा की अवधारणा जानने या कंठस्थ करने की क्रिया न होकर मुक्ति की एक सांस्कृतिक कार्रवाई है।

भारतीय संदर्भ में विद्यालयों की सँख्यात्मक प्रवृत्ति को ही शैक्षिक अवधारणा मानने की भूल की जा रही है। सही अर्थों में प्रचलित आधुनिक शिक्षा को शिक्षा नहीं कहा जा सकता क्योंकि विभेदीकरण के अभाव में बुद्धि का महत्त्व नहीं

है। वह ज्ञान किस काम का यदि उसको कौशल में बदलने की क्षमता न हो। शिक्षा मात्र शब्दों का ज्ञान नहीं है। यह मानसिक क्षितिज को विस्तृत करता है। चरित्र अधिक महत्त्वपूर्ण है जो आध्यात्मिकता द्वारा विकसित किया जा सकता है। इस प्रकार शिक्षा की अवधारणा का आधार विस्तृत मानवतावादी लक्ष्य होना चाहिए, जिसका मूल उद्देश्य मानवतापूर्ण व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होना चाहिए।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली ज्ञान केंद्रित न होकर धन केंद्रित है। प्रमाणीकृत शिक्षा के अंतर्गत शैक्षिक लक्ष्य धनोपार्जन करना है वहीं मानवतावादी शिक्षा का लक्ष्य सभ्य एवं सुसंस्कृत मानव का निर्माण है। अतः प्रतिमान परिवर्तन धन शक्ति की श्रेष्ठता से सभ्य एवं सुसंस्कृत मानव का निर्माण होना चाहिए। इसी को पावलो फ्रेरे बैंकिंग शिक्षा पद्धति (प्रमाणीकरण लक्ष्य) से समस्या उठाऊ शिक्षा (स्वातंत्रावादी शिक्षा) की तरफ प्रतिमान परिवर्तन मानते हैं। लेकिन यहाँ पर पावलो फ्रेरे के चिंतन की सांदर्भिक उपादेयता न्यून प्रतीत होती है क्योंकि भारत में आज भी प्रमाणीकरण के प्रति आकर्षण बना हुआ है एवं प्रमाणीकरण को ही गुणवत्ता से जोड़कर देखा जा रहा है। पावलो फ्रेरे की यह अवधारणा प्रासंगिक लगती है कि औद्योगीकृत समाज संकीर्ण शैक्षिक लक्ष्यों के तरफ मोड़ देता है। प्रमाणीकरण को पावलो फ्रेरे एक निषेधात्मक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। भारतीय संदर्भ में आजकल प्रमाणीकरण को गुणवत्ता के साथ जोड़कर देखा जा रहा है और ऐसा प्रतीत होने लगा है कि प्रमाणीकृत शिक्षा ही एक मात्र शिक्षा है। प्रमाणीकृत शिक्षा की दुर्बलताएँ पश्चिम के विकासशील राष्ट्रों में स्पष्ट कुप्रभाव छोड़ रही है परन्तु भारतीय संदर्भ में प्रमाणीकरण के प्रति आकर्षण है। यहाँ पावलो फ्रेरे वर्तमान भारतीय शैक्षिक संरचनात्मक स्वरूप में अप्रासंगिक प्रतीत होते हैं।

शिक्षा प्रणाली में अभिभावकत्व बोध की कमी

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अभिभावकत्व बोध की कमी है क्योंकि यह सूचनात्मक ज्ञान के आदान-प्रदान तक ही सीमित है। यहाँ सूचनात्मक ज्ञान एक उपहार होता है जो स्वयं को ज्ञानवान समझने वालों (शिक्षक) के द्वारा उनको दिया जाता है, जिन्हें वे नितान्त अज्ञानी (छात्र) समझते हैं। यह शिक्षा प्रणाली शिक्षा और छात्रों के समक्ष स्वयं को एक आवश्यक विलोम के रूप में प्रस्तुत करती है, उन्हें परम अज्ञानी मानकर वह अपने अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करती है। इस शिक्षा के द्वारा छात्रों की सृजनात्मक शक्ति न्यून हो जाती है या समाप्त हो जाती है और तुरन्त विश्वास कर लेने की प्रवृत्ति को बढ़ाती है। शिक्षक असाधारण व्यक्तित्व न होकर सिर्फ वेतनभोगी व्यक्ति बनकर रह जाता है एवं छात्र रटने की वस्तु बनकर।

प्रचलित भारतीय शिक्षा प्रणाली में शिक्षक के कर्म की दो अवस्थाएँ घटित होती हैं। पहली अवस्था में जब शिक्षक अध्ययन कक्ष में या प्रयोगशाला में बैठकर छात्रों के लिए पाठ तैयार करता है, संज्ञेय वस्तु का संज्ञान करता है। दूसरी अवस्था में वह छात्रों के सामने उस वस्तु का प्रतिपादन करता है। छात्रों से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वे उस

वस्तु को जानें, अपेक्षा यह की जाती है कि शिक्षक ने जो बातें बतायी है उन्हें रट लें। छात्र भी किसी संज्ञान कर्म का अभ्यास नहीं करते क्योंकि जिस वस्तु पर यह कर्म होना चाहिए वह शिक्षक और छात्रों के बीच आलोचनात्मक चिंतन उत्पन्न करने का माध्यम नहीं होती बल्कि शिक्षक की अपनी सम्पत्ति होती है। अतः ज्ञान और संस्कृति को सुरक्षित रखने के नाम पर एक ऐसी व्यवस्था रहती है जिसमें न तो सच्चा ज्ञान उपलब्ध होता है, न सच्ची संस्कृति। इस प्रकार प्रचलित शिक्षा प्रणाली में सिर्फ छात्रों के संज्ञानात्मक पक्ष पर ही बल दिया जाता है, भावात्मक व क्रियात्मक पक्ष पूर्णतः उपेक्षित हो जाते हैं जिससे शिक्षा का संबंध सिर्फ स्मृति स्तर तक ही रह जाता है। अवबोध एवं परावर्तन स्तर पृष्ठभूमि में होते हैं, जिससे शिक्षकों एवं शिक्षा प्रणाली में अभिभावकत्व बोध की कमी होती है। पावलो फ्रेरे की स्पष्ट मान्यता थी कि शिक्षा प्रणाली के द्वारा छात्रों में आलोचनात्मक चेतना विकसित होनी चाहिए। शिक्षक एक जगह संज्ञानात्मक और दूसरी जगह वर्णनात्मक नहीं होता। उसकी भूमिका हमेशा संज्ञानात्मक होती है। छात्र निष्क्रिय नहीं रहते, शिक्षक से संवाद करते हुए आलोचनात्मक सह-अनुसंधानकर्त्ता बन जाते हैं। फ्रेरे शिक्षक को अभिभावक के रूप में स्थापित करते हैं जो विवेकीकरण के माध्यम से व्यक्ति का मानुषीकरण करता है।

सृजनात्मकता का ह्रास

वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली परीक्षा केंद्रित, सूचना उन्मुख, प्रमाणीकरण, पुस्तकीय एवं सैद्धांतिक होने के कारण अप्रसांगिक सिद्ध हो रही है। इसमें सिर्फ रटने (स्मरण) पर बल देने के कारण इसमें सृजनात्मकता का अभाव है। छात्रों में मौलिकता, नवीनता, रचनात्मकता, प्रवाहशीलता, नमनीयता आदि मनोवैज्ञानिक गुणों का पूर्णतः विलोप हो रहा है। आज बच्चों को परिवार में मिलने वाली अनौपचारिक शिक्षा अर्थात् बच्चों में व्यवहार प्रतिमान संस्कार, मूल्य एवं आदतों का निर्माण जैसे सामाजिक उत्तरदायित्वों को भी शिक्षण संस्थाओं पर डाल दिया गया है जबकि शिक्षण संस्थाओं की स्थिति यह है कि वहाँ बोझयुक्त पाठ्यक्रम के सामने प्ले वे लर्निंग एवं ज्वायफुल लर्निंग, शिक्षक के स्वस्थ व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति, कक्षा का प्रत्यक्ष संवाद, छात्रों की वास्तविक समस्याओं से परिचित होकर उनके निदान के तंत्र का विकास जैसे शिक्षण बिन्दु पृष्ठभूमि में चले गए हैं, जिससे सृजनात्मकता का क्रमशः ह्रास होता जा रहा है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) की ओर से प्रस्तुत एबिलिटी लर्निंग टेस्ट के नतीजे बताते हैं कि कक्षा-5 तक के औसतन 45% बच्चों को गणित में औसत ज्ञान भी नहीं है। इसके अतिरिक्त भाषा, विज्ञान व सामाजिक विज्ञान में भी पढ़ने-लिखने की स्थिति काफी बदतर है (गुप्ता-2008)।

वर्तमान शैक्षिक परिदृष्य एवं उसका क्रियात्मक पहलू कोर्स रटाने, परीक्षा सम्पन्न कराने और परीक्षा परिणाम तक ही सीमित होकर रह गया है। इस शिक्षा प्रणाली में शिक्षक का स्थान मात्र वेतनभोगी व्यक्ति तथा शिक्षार्थी की स्थिति तोता रटंत जैसे संवेदना शून्य छात्र

की बनकर रह गयी है। परीक्षा का परिणाम बच्चों को आत्मघाती बना रहा है। यथार्थ यह है कि शिक्षा व्यवस्था में पाठ्यक्रम के सामने विद्यार्थी का रचनात्मक व्यक्तित्व कहीं खो गया है। नौकरी और डिग्री के बीच का सहसंबंध भी इस शिक्षा व्यवस्था को पाठ्यक्रमोन्मुख बनाने को मजबूर कर रहा है। इस पाठ्यक्रम में भले ही सैद्धांतिक कौशल है परन्तु छात्र की क्रियात्मक शक्ति लुप्त होती जा रही है। पावलो फ्रेरे द्वारा प्रस्तावित समस्या उठाऊ शिक्षा का मूल उद्देश्य ही अर्थपूर्ण संवाद एवं सृजनात्मकता विकसित करना है। इस प्रकार फ्रेरे का चिंतन एवं समस्या उठाऊ शिक्षा द्वारा छात्रों में निश्चित रूप से सृजनात्मकता का विकास किया जा सकता है।

शिक्षा प्रणाली में अमनोवैज्ञानिकता

वर्तमान युग सूचना एवं संचार तकनीक का है। इसमें ज्ञान का विस्फोट हो रहा है। ज्ञान को सूचना का पर्याय माना जा रहा है। समूचा पाठ्यक्रम ज्ञान के विस्फोट की अवधारणा के कारण जानकारी मूलक बनता जा रहा है। विद्यार्थी अवधारणा को सीखे बिना उसे यांत्रिक रूप से रट लेता है। भारतीय शिक्षा प्रणाली में अधोलिखित अ-मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं—

- शिक्षा प्रणाली का सिर्फ संज्ञानात्मक पक्ष तक ही सीमित होना अर्थात् भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्ष की पूर्णत: उपेक्षा की जा रही है।
- ज्ञान को सूचना का पर्याय मानने के कारण शिक्षक व छात्र सिर्फ स्मृति स्तर के शिक्षण व चिंतन तक सीमित हो गए हैं, अर्थात् अवबोध एवं परावर्तित स्तर पृष्ठभूमि में चले गए हैं।
- शिक्षा प्रणाली केवल बुद्धिलब्धि तक ही सीमित हो गयी है। यह संवेगात्मक बुद्धि लब्धि एवं आध्यात्मिक बुद्धिलब्धि को उपेक्षित कर दे रही है।
- छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास नहीं हो पा रहा है।
- शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया अधिक यांत्रिक हो गयी है।
- बाल मनोविज्ञान एवं बाल केंद्रित शिक्षा सिर्फ सैद्धांतिक अवधारणा बनकर रह गई है।
- इलेक्ट्रॉनिक शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के कारण शिक्षा प्रणाली अ-मनोवैज्ञानिक हो गयी है।

वर्तमान प्रचलित पाठ्यक्रम का अ-मनोवैज्ञानिक एवं अति कृत्रिम होने का ही दुष्परिणाम है कि बच्चों के ऊपर बस्ते का बोझ बढ़ता चला जा रहा है। पाठ्यक्रम मनोवैज्ञानिक रूप से अ-प्रासंगिक सिद्ध हो रहा है जिससे सृजनात्मकता का ह्रास हो रहा है एवं विद्यालय में अतिकृत्रिमता का वातावरण है।

शिक्षा प्रणाली का पुस्तक, पाठ्यक्रम एवं अध्यापक केंद्रित होना

भारत में प्रचलित शिक्षा सैद्धांतिक एवं सूचनात्मक होने के कारण पुस्तक केंद्रित, पाठ्यक्रम केंद्रित एवं शिक्षक केंद्रित होती जा रही है जिसके अधोलिखित दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं—

- प्रतिभाओं की उपेक्षा,
- अवांक्षनीयता को निर्बाध रूप से सामाजिक मान्यता,

- श्रम शक्ति की उपेक्षा,
- उपभोग ही जीवन का अन्तिम अभिप्राय,
- श्रेष्ठ परम्परागत मूल्यों के प्रति उदासीनता,
- शिक्षा को मात्र रोजगार एवं साक्षरता तक सीमित करके इसके सामर्थ्य को न्यून करना,
- गुणवत्तायुक्त शिक्षण एवं प्रशिक्षण का अभाव
- ज्ञानात्मक रूप से पाठ्यक्रमों का अप्रासंगिक होना,
- सूचनात्मक क्षमता को ही श्रेष्ठ शिक्षा का पर्याय मानना, और
- जनसंचार माध्यमों को अ-शैक्षिक कार्यक्रमों में लगाना।

अत: उपरोक्त दुष्प्रभावों को समूल दूर करने के लिए पुस्तकीय ज्ञान के स्थान पर कुशलता एवं कौशल का समावेश होना चाहिए। शिक्षा प्रणाली इस प्रकार विकसित की जाए कि वह व्यक्ति को चरित्रवान, श्रमसाध्य व स्वावलम्बी बनाए। सच्चे अर्थों में शिक्षा का अभिप्राय भी यही है कि वह राष्ट्र निर्माण, मानव निर्माण एवं शांतिपूर्ण विश्व का निर्माण करे। पावलो फ्रेरे की समस्या उठाऊ शिक्षा (Problem Posing Education) द्वारा दुष्प्रभावों को असाध्य होने से पहले जो अपनी शैशवावस्था में ही है, भारत में और अधिक असाध्य होने से पहले ही दूर किया जा सकता है, क्योंकि विवेकीकरण व पूर्णत: मानुषीकरण की अवधारणा भारत में मानवतापूर्ण व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास से संबंधित है। पुस्तक केंद्रित शिक्षा के बारे में फ्रेरे का स्पष्ट अभिमत था कि कभी-कभी हम गलतियाँ कर बैठते हैं। पुस्तक के महत्त्व को, पढ़ने के महत्त्व को तथा अभ्यास के महत्त्व को नकारते हैं जबकि पुस्तकीय शिक्षा में सिद्धांत और व्यवहार दोनों का समावेश क्रियात्मक रूप से होता है और इसमें व्यवहार व सिद्धांत दोनों के बीच एक द्वन्द्वात्मकता होती है अर्थात् सिद्धांत एवं व्यवहार के बीच एकता।

शिक्षा में बढ़ते शैक्षिक बोझ की प्रवृत्ति

किसी भी राष्ट्र या समाज में परिलक्षित होने वाली उन्नति उस राष्ट्र या समाज की शिक्षा का प्रतिफल होती है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है और मनुष्य के द्वारा सभ्यता और संस्कृति का विकास किया जाता है। इसीलिए शिक्षा को जीवन की प्रयोगशाला माना जाता है। लेकिन शिक्षा व्यवस्था के उपाधि एवं मूल्याँकन केंद्रित होने के कारण बालकों पर शैक्षिक बोझ बढ़ता चला जा रहा है एवं बालक कुंठा का शिकार हो रहे हैं।

विद्यार्थियों पर शैक्षिक बोझ और शिक्षा की गिरती हुई गुणवत्ता के संबंध में समय-समय पर चिंता व्यक्त की जाती रही है। विद्यार्थियों पर से शैक्षिक बोझ कम करने के लिए ईश्वर भाई पटेल समिति (1977), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् का कार्य समूह (1984) और राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा समिति (1990) ने महत्त्वपूर्ण सिफारिशें की हैं—पर जब भी नया पाठ्यक्रम लागू किया जाता है, समस्या घटने के स्थान पर और बढ़ जाती है।

भारतीय संदर्भ में प्रो. यशपाल की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी, जिसने 1993 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय को अपना

प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसका शीर्षक था— 'लर्निंग विदाउट बर्डेन' अर्थात् 'शिक्षा बिना बोझ के'। प्रो. यशपाल ने महत्त्वपूर्ण सुझाव दिया कि बच्चों को बोझ (शैक्षिक) से पूर्णतया मुक्त किया जाए, उन्हें पुस्तकीय ज्ञान न देकर व्यावहारिक व कौशलात्मक ज्ञान दिया जाए। उन्होंने बढ़ते शैक्षिक बोझ के लिए 'ज्ञान का विस्फोट' को महत्त्वपूर्ण कारण माना। उन्होंने सुझाव दिया कि विद्यालयों में व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने वाले कार्यक्रम आयोजित न किये जाए, शिक्षक-प्रशिक्षण को पत्राचार द्वारा न दिया जाएँ, छात्रों से रटने वाले प्रश्न न पूछकर अवधारणात्मक प्रश्न पूछे जाएँ एवं बालकों के पाठ्यक्रम में सृजनात्मक कौशल से संबंधित अँशों का समावेश किया जाए। इस रिपोर्ट में निम्नलिखित अनुशंसाए की गई—

- प्राथमिक स्तर तक केवल मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम होनी चाहिए।
- व्यक्तिगत सफलता को पुरस्कृत किये जाने वाली प्रतियोगिताओं को हतोत्साहित किया जाना चाहिए क्योंकि वे बालकों को आनन्ददायक शिक्षा से वंचित करती हैं। फिर भी स्कूलों में सहयोगशील शिक्षा प्राप्ति को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सामूहिक क्रियाकलाप तथा सामूहिक सफलता को प्रोत्साहित व पुरस्कृत किया जाना चाहिए।
- पाठ्यक्रम निर्माण तथा पाठ्यपुस्तक लेखन की प्रक्रिया को विकेंद्रित किया जाना चाहिए जिससे शिक्षकों की भागीदारी बढ़ सके।
- सैंट्रल बोर्ड ऑफ सैकेंडरी एजुकेशन का अधिकार क्षेत्र केवल केंद्रीय तथा नवोदय विद्यालयों तक ही सीमित रहे और दूसरे सभी स्कूल अपने राज्य मण्डलों से सम्बद्ध रहें।
- नर्सरी कक्षाओं में प्रवेश के लिए टेस्ट और साक्षात्कार लेने की प्रथा समाप्त की जानी चाहिए।
- छोटे-छोटे बच्चों को प्रतिदिन किताबों के भारी बस्तों को स्कूल ले जाने के लिए मजबूर कर यंत्रणा देने का कोई औचित्य नहीं है। पाठ्यपुस्तकें स्कूल की सम्पत्ति होनी चाहिए। स्कूल को गृह कार्य के लिए अलग से समय-सारिणी तैयार कर बच्चों को पहले से बता देना चाहिए।
- परीक्षाओं का पुनरीक्षण कर यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि पाठ्यसामग्री आधारित और प्रश्नोत्तर के प्रकार के प्रश्नों के स्थान पर संकल्पना आधारित प्रश्न पूछे जाएँ।

लेकिन सरकार ने रिपोर्ट पर अमल न कर पुनः उसकी संभाव्यता के परीक्षण के लिए चतुर्वेदी समिति का गठन कर दिया। चतुर्वेदी समिति ने यशपाल समिति की मुख्य सिफारिशों को ही नकार दिया। इस प्रकार काफी समय तक यशपाल समिति की रिपोर्ट एक सैद्धांतिक विमर्श की वस्तु बनकर रही। परन्तु हाल ही में एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 का आधार इस रिपोर्ट को बनाया और इसकी अनुशंसाओं पर अमल करते हुए न केवल पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों में बदलाव लाए गए वरन् परीक्षापद्धति में सुधार लाने में प्रयास जारी हैं।

हमारी शिक्षा व्यवस्था में आज यह कमजोरी है कि हम बच्चों के अपने अनुभवों को उनकी

अपनी स्वाभाविक भाषा को, स्वाभाविक बोली को बहुत जल्दी एक मानक भाषा में या एक मानक सोच के साँचे में ढाल देना चाहते हैं। हम अपने व्यवहार में एक छोटे बच्चे और एक किशोर में फर्क नहीं कर पाते। हालाँकि सैद्धांतिक रूप से शिक्षक शिक्षक-प्रशिक्षण में बाल मनोविज्ञान एवं शिशु मनोविज्ञान के बारे में सीखते हैं, लेकिन कक्षा शिक्षण में अनुप्रयोग नहीं करते अर्थात् अनुप्रयोगात्मक उपादेयता न्यून हो जाती है। शिक्षा के इन आरंम्भिक वर्षों में बच्चे जिन प्राकृतिक क्षमताओं के साथ आये हैं, उन्हें पहचान कर उनको संवारना, उनको निखारना, प्रोत्साहित करना शिक्षा का उस अवस्था के लिए उद्देश्य होना चाहिए तभी बच्चा एक ऊर्जस्व व्यक्ति बन सकेगा। वह चुप नहीं बैठेगा और सहभागिता करते हुए अपने दिमाग से सोचेगा। उस समय वह शिक्षक के बताए गए सत्य का मोहताज नहीं होगा। नए-नए स्रोतों को ढूँढेगा। सिर्फ पाठ्यपुस्तक पर निर्भर नहीं रहेगा। वह पाठ्यपुस्तक से शुरु होकर अन्य स्रोतों की तरफ बढ़ेगा।

('शिक्षा के उद्देश्य' कृष्ण कुमार-2005)

शैक्षिक बोझ के कारण ही आज भी बालकेंद्रित शिक्षा प्रणाली एक सैद्धांतिक अवधारणा बनकर रह गयी है, जिसके कारण छात्रों में तर्क, विश्लेषण, सृजनशीलता आदि गुणों का अभाव है। बालकों में समस्या समाधान व आलोचनात्मक चिंतन का विकास नहीं हो पा रहा है। जबकि पावलो फ्रेरे की पेडागाजी में शिक्षार्थी को केंद्र में रखकर शिक्षा योजना प्रस्तावित की गयी है एवं इसके समाधान स्वतंत्रावादी शिक्षा (समस्या उठाऊ) में मिलते हैं। इस प्रकार फ्रेरे विवेकीकरण एवं आलोचनात्मक चेतना की अवधारणा को महत्त्व देते हैं।

शिक्षण संस्था में अति कृत्रिमता

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षण संस्थाओं का वातावरण नीरस, अव्यावहारिक एवं अति कृत्रिम होता है। जो बालकों के लिए नीरस एवं उबाऊ होता है। यहाँ का वातावरण भययुक्त होता है— यथा शिक्षक का डर, घंटी का डर, प्रवेश का डर, परीक्षा का डर, मूल्याँकन का डर, पाठ्यक्रम का डर, अनुदेशन के माध्यम का डर। इसके परिणामस्वरूप छात्रों की सृजनात्मक क्षमता जिज्ञासा व कल्पनाशक्ति का विकास नहीं होता है। शिक्षण संस्था अपने विद्यार्थियों को उनकी आयु के अनुसार बाँट देती है। प्रायः इस वर्गीकरण में मान लिया जाता है कि बालक विद्यालय के लिए हैं, बालक विद्यालय में ही अधिगम प्राप्त करते हैं तथा बालकों को सिर्फ विद्यालय के माध्यम से ही सिखाया जा सकता है। जबकि यथार्थ यह है कि विद्यालय बालकों के लिए हैं। बालक विद्यालय के अतिरिक्त अन्य माध्यमों से भी अधिगम अर्जित करते हैं।

विद्यालयीकरण के प्रभाव के अंतर्गत आने वालों में औपचारिक शिक्षा व्यवस्था द्वारा दिये जाने वाले प्रमाण-पत्रों, डिप्लोमा एवं उपाधियों को ही ज्ञान प्राप्ति का निर्णायक लक्ष्य मान लेने की प्रवृत्ति होती है। इस धरणा का शिकार होकर विद्यार्थी भी शिक्षा का अर्थ प्रमाण-पत्र या उपाधियाँ अर्जित करना समझने लगते हैं और जिनके पास जितनी अधिक उपाधियाँ होती हैं उन्हें वे उतना

ही अधिक ज्ञानी सिद्ध या विशेषज्ञ मान बैठते हैं। जबकि इवान इलिच की तरह ही पावलो फ्रेरे का चिंतन भी यह मानता है कि संस्था से बाहर भी शिक्षा जैसी कोई प्रक्रिया हो सकती है, क्योंकि फ्रेरे भी तत्कालीन शिक्षा प्रणाली को वर्णनात्मक मानते थे। इसलिए बैंकिंग प्रणाली की आलोचना करते हैं। भारतीय संदर्भ में विद्यालयों में शिक्षा की अवधारणा, शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, अनुशासन, वातावरण, शिक्षक-शिक्षार्थी संबंध एवं शिक्षण अधिगम परिस्थितियों में भी स्वभाविक वातावरण न होकर कृत्रिम पारिस्थितिकी पायी जाती है।

संस्थागत शिक्षा को ही शिक्षा का पर्याय मानना

प्रचलित भारतीय शिक्षा में संस्थागत शिक्षा को ही शिक्षा का पर्याय माना जाता है क्योंकि यह धारणा प्रचलित हो गयी है कि बालकों को विद्यालय (संस्था) के माध्यम से ही सिखाया जा सकता है। परीक्षा, मूल्याँकन एवं प्रमाणीकरण की विश्वसनीयता एवं वैधता संस्थागत शिक्षा में अधिक है। लेकिन संस्थागत शिक्षा के माध्यम से विद्यालयों में प्रवेश कराने मात्र से ही सार्वभौमिक शिक्षा सम्भव नहीं है। यह न तो शिक्षकों की अपने छात्रों के प्रति परिवर्तित अभिवृत्ति और न ही शैक्षिक हार्डवेयर या साफ्टवेयर के विस्तार या शिक्षक के दायित्व में अभिवृद्धि द्वारा उपलब्ध हो सकती है। भारतीय संदर्भ में दी जाने वाली शिक्षा समाज में मिथ्या एवं भ्रम पैदा कर रही है। संस्थागत शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करने का प्रयास तो किया किन्तु प्रयास असफल सिद्ध हुआ। शैक्षिक भूमिका का निर्वाह करने में संस्था अप्रासंगिक सिद्ध हो रही है।

संस्थागत शिक्षा भी भारतीय संदर्भ में विभेद कर रही है। एक तरफ गरीब, शोषित, पिछड़ों एवं सामान्य जन के लिए सरकारी शिक्षा है तो दूसरी तरफ, अभिजात वर्ग के लिए महँगी निजी शिक्षा है। इस प्रकार संस्थागत शिक्षा भारतीय संदर्भ को 'भारत' एवं 'इंडिया' में विभाजित कर रही है। सूचना एवं संचार तकनीक शिक्षा (इलेक्ट्रॉनिक शिक्षा) भी भारतीय जनमानस में 'डिजिटल डिवाइड' कर रही है, एक तरफ भारत जिसका संबंध 98% से है तो दूसरी तरफ से इंडिया जो 2% है। इससे सामाजिक विलगाव (Social Isolation) को बढ़ावा मिल रहा है। इस प्रकार संस्थागत शिक्षा से संकीर्ण परिवेश सृजित हो रहा है एवं अभिजात वर्ग के हित का पोषक है। शिक्षा सामाजिक रूपांतरण जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य से विमुख होती जा रही है, क्योंकि पूर्णतः मानुषीकरण के लिए आलोचनात्मक चेतना एवं सामाजिक रूपान्तरण अनिवार्य है।

संस्थागत शिक्षा में समग्र मनुष्य की अवधारणा से संबंधित संकीर्णता से है। शिक्षा का संदर्भ मनुष्य के व्यक्तित्व की समग्रता है। जिंदगी जीने की बुनियादी जरूरतों के मामले में प्रत्येक स्त्री-पुरुष समान है और यही मानवता की एकता है। इस उद्देश्य की तरफ ऐसा स्कूल बढ़ ही नहीं सकता जो अपनी प्रवेश नीति के माध्यम से सामाजिक स्तर योग्यता या व्यवहार की एक रूपता स्थापित करना चाहता हो। पढ़ाई भले वहाँ कितनी कठोर होती हो परन्तु ऐसी शिक्षा बच्चे

के मन में निहित सार्थकता की प्यास नहीं बुझा सकती। सार्थकता का जन्म दूसरे मनुष्यों से हमारे रिश्ते की पृष्ठभूमि में होता है। दूसरों से जुड़ना ही वह संदर्भ रचता है जिसमें हमारी ज्ञान-पिपासा और जाँच-पड़ताल सार्थक बनती है। सीमित प्रवेश की नीति पर चलने वाले स्कूल में यह संदर्भ स्थायी रूप से अविकसित रहता है। वहाँ पढ़ने को विवश रहते हैं। अभिजात स्कूल का वातावरण मानवीय रूप से इतना कुपोषित रहता है कि अपने बच्चों को प्रोत्साहित करने के लिए उसे अनवरत् प्रतियोगिता का प्रबंध करना पड़ता है। 'निजी उपलब्धि' और 'संस्था के प्रति निष्ठा' समानार्थी बना दिये जाते हैं। अंतर्विरोध यह है कि एक तरफ अभिजात स्कूल प्रतियोगिता के द्वारा योग्यता के प्रोत्साहन पर बल देते हैं, दूसरी तरफ वे शिक्षण के आधुनिक प्रगतिशील तरीके लागू करना चाहते हैं। फोबेल के बाद से शिक्षण में प्रगतिशीलता एक मुख्य बात रही है कि बच्चों को बच्चों की तरह रखिए अर्थात् उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक जीने दिया जाए (कृष्ण कुमार-1996)।

इस प्रकार सिर्फ संस्थागत शिक्षा द्वारा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सभी को नहीं प्रदान की जा सकती। वैकल्पिक साधन भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं—यथा दूरवर्ती शिक्षा, मुक्त शिक्षा, इलेक्ट्रॉनिक शिक्षा आदि। पावलो फ्रेरे ने स्वीकार किया कि संस्था या विद्यालय के बाहर भी शिक्षा जैसी कोई चीज हो सकती है। उन्होंने हाइलैंडर इंस्टीच्यूट की स्थापना करके इसको सिद्ध किया। भले ही उन्हें संस्थागत शिक्षा के विरोध करने के कारण देश से निर्वासित जीवन जीना पड़ा। उनका भी मानना था कि प्रचलित शिक्षा उत्पीड़ितों का पूर्णतः मानुषीकरण नहीं कर सकती। इस विमर्श के आधार पर कहा जा सकता है कि संस्थागत शिक्षा, शिक्षा का पर्याय नहीं हो सकती।

स्वतः प्रयास से सीखने में कमी

भारतीय शिक्षा प्रणाली में बालकों में स्वतः प्रयास से सीखने में कमी होती जा रही है। क्योंकि बालकों को नित्य नई उपलब्धि की ओर अग्रसर करने वाले ये स्कूल 'समय' को एक यांत्रिक दृष्टि से देखते हैं। इस दृष्टि से समय एक वस्तु है जो दबाकर छोटी की जा सकती है, अर्थात् बालकों की स्वभाविक रफ्तार को जबरन बढ़ाया जा सकता है, जिससे वे कम-से-कम समय में अधिक चीजें सीख लें। इस दृष्टि के रहते अभिजात स्कूल बालकों को किसी काम में तल्लीन हो जाने और घंटों लगे रहने की स्वतंत्रता नहीं दे सकते। उनपर जल्दी से जल्दी सीखते जाने और दूसरे बच्चों को पीछे छोड़ने के लिए इतना दबाव डाला जाता है कि सीखने की स्वतः स्फूर्त प्रेरणा मर जाती है। सिर्फ अध्यापक को खुश रखने और माँ-पिता की निगाह में गर्व का पात्र बनने की लालसा बची रहती है। अभिजात स्कूलों में पढ़ने वाले अधिकाँश छात्र प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करते बौद्धिक रूप से राख हो चुके होते हैं।

स्वतः प्रयास से सीखने में कमी के लिए अध्यापकों की भी जबाबदेही बनती है। विद्यार्थी क्या सीख रहे हैं, कितना सीख पा रहे हैं और क्या कुछ नया कर पा रहे हैं। अधिकाँश विद्यालयों में यह देखने के लिए मिलता है कि शिक्षक

सूचनाओं के हस्तांतरण मात्र का ही कार्य करते हैं जो सूचना एवं संचार तकनीक युग में और माध्यमों द्वारा कहीं अधिक प्रभावशाली ढंग से किया जाना सम्भव है। वे विद्यार्थियों की ऊर्जा, रचनात्मकता व सीखने की क्षमताओं का उपयोग व्यर्थ की सूचनाएँ इकट्ठी करने, उन्हें रटने और परीक्षाओं में ज्यों-का-त्यों उगलवाने में कर रहे हैं। इस प्रकार के शिक्षण से वह सब नष्ट हो जाता है जो बच्चों के पास स्कूल आने से पहले होता है। उसकी सृजनात्मक क्षमता, भावनाओं और यहाँ तक कि उसके 'बचपन' को कुचल दिया जाता है। इस प्रकार शिक्षक और शिक्षार्थी के संबंध पर आधारित बैंकिंग शिक्षा पद्धति से समस्या उठाऊ पद्धति के तरफ प्रतिमान परिवर्तन करके छात्रों में विश्लेषण, आलोचनात्मक चेतना, स्वत: प्रयास से सीखना एवं सृजनात्मकता आदि मानसिक शक्तियों को छात्रों में विकसित किया जा सकता है।

गुणात्मक शिक्षा का संकट

भारत में प्रचलित शिक्षा (प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च शिक्षा) में विस्तार सिर्फ सँख्यात्मक आधार पर हो रहा है, गुणवत्ता का क्रमश: विलोप होता जा रहा है। एक समय भारतीय शिक्षा पद्धति (विशेष रूप से तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशीला) वैश्विक अध्ययन के केंद्र हुआ करते थे, लेकिन वर्तमान संदर्भ में गुणात्मक शिक्षा एक मिथक बनकर रह गयी है। प्राथमिक शिक्षा में आज भी सार्वभौमिक अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा के संवैधानिक प्रतिबद्धता के बावजूद हम सभी के लिए गुणात्मक शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर पा रहे हैं, सकल नामाँकन दर में तो वृद्धि हुई है, लेकिन विद्यालय त्याग (ड्राप आउट) काफी ऊँची है, दूसरी तरफ माध्यमिक शिक्षा सिर्फ एक कड़ी का कार्य करने तक सीमित रह गयी है। उच्च शिक्षा की स्थिति तो और भी दयनीय है। भारत का एक भी उच्च शिक्षण संस्थान/ विश्वविद्यालय विश्व के टॉप 100 में गुणवत्ता के दृष्टि से स्थान नहीं पा सके हैं। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने अपनी टिप्पणी में कहा कि भारतीय स्नातक नौकरी में रखने लायक नहीं हैं।

दूसरी तरफ स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के वर्षों में भारत ने अनेक शिक्षा संस्थानों, शोध संस्थानों तथा राष्ट्रीय व क्षेत्रीय स्तर की प्रयोगशालाओं की स्थापना की। आज 21वीं सदी में भारत की युवा पीढ़ी ने सूचना एवं संचार तकनीक के क्षेत्र में भारत को अत्यन्त सम्मानजनक स्थान दिलाया है। वैश्विक स्तर पर 'ज्ञान समाज' के निर्माण में भारत की भूमिका अग्रणी है। स्वतंत्रता के समय भारत की साक्षरता दर 20% थी। आज यह 65-68% है। भारत के उच्च शिक्षा संस्थानों में केवल 10% 18-23 आयु वर्ग के युवा शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। विश्व स्तर पर यह औसत 22% है। अपनी आर्थिक विकास दर बनाए रखने के लिए भारत को इस 10% को 20-22% तक पहुँचाना होगा। स्पष्टत: उच्च शिक्षा में बहुत बड़े प्रसार की त्वरित आवश्यकता है। भारत में उच्च शिक्षा में स्थानों की कमी के कारण लगभग 80 हजार युवा प्रति वर्ष विदेशों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने जाते हैं। जबकि भारत में केवल 8 हजार विद्यार्थी बाहर से आते हैं जिनमें अधिकाँश भारतीय मूल के होते हैं।

इसका मूल कारण भारतीय शिक्षा संस्थाओं में गुणवत्ता में कमी का होना है। गुणवत्ता की स्थिति यह है कि भारत के दो तिहाई विश्विद्यालय तथा 90% महाविद्यालय गुणवत्ता के मानकों पर औसत से नीचे का कार्य निष्पादन कर रहे हैं। नि:सन्देह विश्वविद्यालयी शिक्षा में बड़े परिवर्तन की आवश्यकता है ताकि निकलने वाले युवा कौशल तथा ज्ञान के क्षेत्र में अपनी स्वीकार्यता सम्मान के साथ पा सकें। भारत सरकार, राष्ट्रीय ज्ञान आयोग, सामान्य एवं प्रबुद्धजन सभी का मानना है कि उच्च शिक्षा में गुणवत्ता कौशलों की कमी एक बड़ी असफलता का बिंदु रहा है। सबसे प्रमुख समस्या गुणवत्ता बनाए रखने तथा बड़े विस्तार के साथ उच्च शिक्षा में युवा वर्ग की भागीदारी को 22% से आगे लाने की हैं। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने इसे 15% लाने के लिए सुझाव दिये हैं। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के सुझाव के संदर्भ में मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने तकनीकी तथा प्रबंधन के संस्थानों आई.आई. टी. एवं आई.आई.एम. की संस्था लगभग दोगुना करने जा रहा है। 30 नये केंद्रीय विश्वविद्यालय बनाए जा रहे हैं (राजपूत–2008)।

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखना अहम चुनौती है। इसके लिए प्रतिबद्धता, कार्य संस्कृति, सकारात्मक सोच एवं राजनैतिक दृढ़ इच्छाशक्ति आवश्यक है। कोठारी आयोग (1964–66) ने अपनी अनुशंसा में शिक्षा पर सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) का 6% खर्च करने की सिफारिश की थी, लेकिन आज भी हम सिर्फ 3.5–3.8% तक ही शिक्षा पर खर्च कर रहे हैं, जबकि विकसित देश बहुत पहले से ही 7% खर्च कर रहे हैं वहीं अन्य विकसित देश 1.5% जी.डी.पी. का खर्च कर रहे हैं। निष्कर्षत: गुणवत्तायुक्त शिक्षा द्वारा ही प्रतिमान परिवर्तन 'मनी मेकिंग एजुकेशन' से 'मैन मेकिंग एजुकेशन' की तरफ किया जा सकता है।

वैश्वीकरण, सूचना एवं संचार तकनीक एवं शैक्षिक संकट

भारतीय शैक्षिक परिदृश्य आज संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। भारत को अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक से कर्ज लेने के लिए अपनी आर्थिक नीतियों में परिवर्तन करना पड़ता है। परिणामत: भारतीय शिक्षा भी वैश्वीकरण एवं संचार क्रांति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। भारतीय शैक्षिक परिदृश्य में अधोलिखित संकट परिलक्षित हो रहे हैं—

- शिक्षा का उद्देश्य चरित्र एवं मानव निर्माण न होकर धनोपार्जन हो गया है।
- शिक्षा एक संस्कार एवं सर्वांगीण विकास न होकर एक वस्तु बनकर रह गयी है।
- मनुष्य को एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्राणी न मानकर एक संसाधन माना जा रहा है।
- ज्ञान का स्थान सूचना ने ले लिया है।
- भारतीय संदर्भ में 'डिजिटल डिवाइड' के रूप में सामाजिक विलगाव तेजी से बढ़ रहा है।
- पूरी शिक्षा प्रणाली यांत्रिक रूप से 'इलेक्ट्रॉनिक केंद्रित' हो गयी है।
- इलेक्ट्रानिक युग में 'मुक्ति' का एजेंडा पृष्ठ भूमि में चला गया है।

- सूचना-संचार तकनीक सिर्फ संज्ञानात्मक पक्ष तक ही सीमित है, भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्ष पूर्णत: उपेक्षित है।
- शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया से आलोचनात्मक चिंतन, सृजनात्मक चिंतन एवं अन्त:क्रिया का पूर्णत: विलोप हो गया है।

21वीं सदी ज्ञान आधारित समाज है, जो तीन मूलभूत अवधारणाओं पर आधरित है—

(क) सूचना-प्रौद्योगिकी समस्त आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक गतिविधियों का संचालन करेगी अर्थात् किसी भी कार्यक्रम की अंतर्वस्तु अपने संचार के माध्यम के अधीन होगी।

(ख) एकीकरण की प्रक्रिया समग्र संसार को जकड़ लेगी इसलिए जिनके पास अति उच्च स्तर की सूचना प्रौद्योगिकी होगी उन्हें वैश्विक स्तर पर सभी क्षेत्रों में बढ़त हासिल होगी। इस प्रकार राज्य, राष्ट्र, स्वायत्तता के परिक्षेत्रों वैश्विक गाँव (ग्लोबल विलेज) में पुराने पड़ जायेंगे।

(ग) समाजवाद, पूँजीवाद, सर्वोदय, मूल्यगामी मानवतावाद जैसे विचारधारागत मूल्यों की जगह भौतिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धि के सार्वभौम मूल्य ले लेंगे (मोहन्ती-2001)।

उत्तर औपनिवेशिक समाज दोनों ही धाराओं में बह रहे हैं—एक धारा भूमंडलीकरण की है तो दूसरी धारा मुक्ति के लिए निरन्तर जारी संघर्ष की। वस्तुत: इन समाजों ने औपनिवेशिक वर्चस्व के विरुद्ध संघर्ष किया और स्वतंत्रता अर्जित की है। पावलो फ्रेरे का चिंतन मुक्ति के लिए निरंतर जारी संघर्ष की धारा से संबंधित रहा जो उत्पीड़ितों के पूर्णत: मानुषीकरण पर टिका रहा। सृजनशील समाज सामाजिक विकास की उस अवस्था को कहते हैं जिसमें अब तक मंद अंतर्विरोध सक्रिय तथा सुसंबद्ध हो चले हों तथा ज्यादा से ज्यादा व्यक्ति और समूह अपनी सृजनशील संभावना के प्रति जागरूक होते जा रहे हों। इस अवस्था की विशेषता यह होती है कि जनता का वंचित वर्ग अपनी सृजनात्मकता को साकार करने के समक्ष खड़ी बाधाओं के प्रति नव चेतना से भर उठता है। जब शोषित वंचित, दलित, महिला, आदिवासी, कामगार अपनी सृर्जनात्मक संभावनाओं को साकार करने के लिए अपने अधिकारों की पूर्ति करना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में माँगों को लेकर संघर्ष अनिवार्य रूप से जुड़ा होता है। सृजनशील समाज की विशेषता है विरोध का वातावरण होना।

निष्कर्ष

भारतीय संदर्भ में टैगोर, विवेकानंद, अरविंद, गाँधी, गिजुभाई, श्री सत्य साई बाबा जैसे विचारकों ने जिन भारतीय शिक्षा की समस्याओं को विश्लेषित किया है उसी को यूरोप, अमेरिका, ब्राजील की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक उपक्रमों के क्षेत्रों में पावलो फ्रेरे ने देखने का प्रयास किया है। फ्रेरे, इवान इलिच की भाँति सम्पूर्ण शैक्षिक ढाँचे को नष्ट करने के हिमायती तो नहीं हैं लेकिन शिक्षा प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन चाहते हैं। निर्विद्यालयीकरण की भाँति फ्रेरे मानते हैं कि शिक्षण संस्था से बाहर भी शैक्षिक प्रक्रिया सभंव है। वह शिक्षा

प्रणाली के माध्यम से छात्रों में आलोचनात्मक चेतना विकसित कर सामाजिक न्याय केंद्रित शोषणमुक्त पूर्ण मानुषीकरण जैसा परिवर्तन क्रांति (शैक्षिक) के द्वारा लाने पर बल देते है। पावलो फ्रेरे सर्वाधिक प्रासंगिक समस्या उठाऊ शिक्षा, पाठ्यक्रम लचीलापन, स्वत: स्फूर्ति द्वारा सीखना, शिक्षक को अभिभावकत्व बोध बनाने, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिकता से समृद्ध करने, बालक को वस्तु की जगह मानव इकाई मानने, सीखने को कृत्रिमता के भ्रम से यथार्थ के धरातल पर लाने, अनौपचारिक शैक्षिक गतिविधियों को शैक्षिक रूप से अधिक प्रभावी बनाने, शिक्षा के माध्यम से सामाजिक रूपान्तरण करने आदि के प्रयासों में लगते हैं।

संदर्भ

कुमार कृष्ण 1996. दोहरी शिक्षा व्यवस्था का अभिशाप, *परिप्रेक्ष्य,* न्यूपा, वर्ष-3, अँक-1

_____2005. शिक्षा का उद्देश्य और आज की व्यवस्था, *भारतीय आधुनिक शिक्षा,* एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, वर्ष 23, अँक-4

गुप्ता, विशैष 2008. शिक्षा व्यवस्था का आईना, *दैनिक जागरण*-16 फरवरी

गौड़, आर. एस. 2001. *महात्मा गाँधी का शिक्षा दर्शन, परिप्रेक्ष्य* न्यूपा, अप्रैल-अगस्त 2001 वर्ष 8 अँक 1-2

टेलर, पी. 1993. *दि टेक्स्ट्स ऑफ पावलो फ्रेरे*, बकिंघम : ओपन यूनिवर्सिटी प्रेस पृ. 93-94

फ्रेरे, पावलो 1970. *पेडागाजी ऑफ आप्रेस्ड* पेनगुइन, बुक्स एजुकेशन सिरीज

मोहन्ती, एम. 2001. समाज विज्ञान, भूमंडलीकरण और सर्जनशील समाज की चुनौतियाँ, *परिप्रेक्ष्य*, न्यूपा, नई दिल्ली, वर्ष-8, अँक 1-2

राजपूत, जे.एस. 2006. उच्च शिक्षा की समस्याएँ, *दैनिक जागरण*, 5 जुलाई 2008

सिंह, डी. 2002. *श्री सत्य साईं बाबा का शिक्षा दर्शन —सिद्धांत एवं व्यवहार में*-अप्रकाशित शोध ग्रंथ, शिक्षा संकाय, वी.बी.एस. पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर